२३

अपरिग्रह : अनासक्ति योग

जड़ वस्तुओं के अधिक संग्रह से मनुष्य की आत्मा दब जाती है और उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। अतः आत्म-विकास के लिए अपरिग्रह की विशेष आवश्यकता होती है।

उत्तराध्ययन सूत्र के चौथे अध्ययन में भगवान् महावीर ने कहा है कि—"हे प्रमादी जीव! इस लोक या परलोक में धन शरण देने वाला नहीं है। अन्धकार में जैसे दीपक बुझ जाए, तो देखा हुआ मार्ग भी बिन देखे जैसा हो जाता है, वैसे ही पौद्गलिक वस्तुओं के मोहांधकार में न्याय-मार्ग का देखना और न देखना, दोनों ही समान हो जाते हैं। ममत्ववृत्ति के त्याग से ही धर्म-मार्ग का आचरण किया जा सकता है।"[1]

संग्रहखोरी, संचयवृत्ति या पूंजीवाद आज के सभी पापों के जनक हैं। अपनी-अपनी भूमिका के अनुरूप रंक से लेकर राजा तक सभी संग्रह करने में ही मग्न हैं। मनुष्य चाहे जितने छोटे-बड़े व्रत-नियम करें, पर संग्रह वृत्ति पर नियन्त्रण न रखें, तो वे सच्चे अर्थ में अपना विकास नहीं कर सकेंगे।

शंकराचार्य ने ठीक ही कहा है कि **'अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।'** अर्थ सचमुच अनर्थ ही है। शास्त्रकारों ने 'अर्थ' के इतने अधिक अनर्थ बताए हैं, फिर भी इस अर्थप्रधान युग में अर्थ को ही प्राण समझा जा रहा है। अपना कोई प्रियजन मर जाए, तो उसका दुःख कुछ महीने बाद भुला भी दिया जाता है, परन्तु धन का नुकसान होता है, तो उसका दुःख सारी जिन्दगी तक मनुष्य भूलता नहीं है। मनुष्य की आज धन के लिए जितनी प्रबल आकांक्षा है, उतनी अन्य किसी के लिए प्रतीत नहीं होती है।

सन्त तुकाराम ने अपरिग्रह के सम्बन्ध में कहा है—

"तुका म्हणे धन आम्हां गोमांसा समान।"

अर्थात्—धन का आवश्यकता से अधिक स्नेह करना, गोमांस की तरह त्याज्य होना चाहिए।

बिनोबा भावे ने कहा है कि 'जिस पैसे की तुम परमेश्वर की तरह पूजा करते हो, वह पैसा परमेश्वर नहीं, पिशाच है, जिसका भूत तुम पर सवार हो गया है। जो रात-दिन तुमको सताता रहता है और तनिक भी आराम नहीं लेने देता है। पैसा रूपी पिशाच को तुम देवतुल्य समझ कर कब तक पूजते रहोगे और नमस्कार कर उसके आगे कब तक अपनी नाक रगड़ते रहोगे।'

यह परिग्रह काम, क्रोध, मान, माया और लोभ का जनक है। धर्मरूपी कल्पवृक्ष को जला देने वाला है। न्याय, क्षमा, सन्तोष, नम्रता आदि सद्गुणों को खा जाने वाला विषैला कीड़ा है। परिग्रह बोधबीज का यानि समकित का विनाशक है और संयम, संवर तथा ब्रह्मचर्य का घातक है। यह जन्म, जरा और मरण के भय को पैदा करने वाला है। मोक्षमार्ग में विघ्न खड़ा करने वाला और विषाक्त किंपाक फलों को देने वाला है। चिन्ता और शोक रूप सागर को बढ़ाने वाला, तृष्णा रूपी विषवल्लरी को सींचने वाला, कूड़-कपट का भण्डार और क्लेश का घर है।

---

१. वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमंमि लोए अदुवा परत्थे।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव॥

—उत्तराध्ययन, ४,५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ लोग परिग्रह की मर्यादा तो ले लेते हैं, पर उसमें छूट बहुत रख लेते हैं। ऐसा करने से व्रत का आशय सिद्ध नहीं होता है। सचमुच देखा जाए तो यह व्रत परिग्रह को घटाने के लिए है। हमारे पास जितना हो, उसमें से भी धीरे-धीरे कम करते जाना चाहिए। परिग्रह कम करते जाने पर ही परिग्रह परिमाण व्रत तेजस्वी बन सकता है। मानव समाज को सुखी बनाने के लिए और विविध संघर्षणों से मुक्त करने के लिए इस व्रत की नितान्त आवश्यकता है।

अपरिग्रह के अतिचार :

"क्षेत्र-वस्तु-हिरण्य-सुवर्ण धन-धान्य-दासीदास, कुप्यप्रमाणातिक्रमाः"

इस व्रत के पाँच अतिचार हैं। खेत, घर, धन-धान्य, दास-दासी, सोना-चांदी आदि की बंधी हुई मर्यादा का उल्लंघन करना, इस व्रत के अतिचार हैं। इन अतिचारों से बचते हुए क्रमशः परिग्रह को कम करते जाना ही आत्म-शान्ति को पाने का और विकास करने का राजमार्ग है।

बारह व्रतों में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पाँच व्रत मूल व्रत हैं। धर्मरूपी वृक्ष के ये मूल हैं? सामायिक, पौषध, तप आदि नियमों को उत्तर व्रत के रूप में माना गया है। धर्मरूपी वृक्ष के ये पत्ते हैं। मूल व्रतों के साथ ही इनका पालन करना लाभदायी होता है। उनके अभाव में इनका पालन करना, मूल को छोड़कर पत्तों को पानी पिलाने का प्रयत्न करने जैसा है। अतः मनुष्य को मूल व्रतों की तरफ पहले ध्यान देना चाहिए।

अपरिग्रह के महान् संदेशवाहक श्रमण भगवान् महावीर ने सहज-भाव से उपयोग में आनेवाले वस्त्र आदि कुछ स्थूल पदार्थों को परिग्रह नहीं बतलाया है। वास्तविक परिग्रह तो उन्होंने किसी भी पदार्थ पर मूर्च्छा का—आसक्ति का रखना बतलाया है—"मुच्छा परिग्गहो।"

पूर्ण-संयमी को धन-धान्य और नौकर-चाकर आदि सभी प्रकार के परिग्रहों का त्याग करना होता है। समस्त पाप-कर्मों का परित्याग करके सर्वथा निर्ममत्व होना, तो और भी कठिन बात है।

परिग्रह-विरक्त मुनि जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण आदि वस्तुएँ रखते हैं, वे सब एकमात्र संयम की रक्षा के लिए ही रखते हैं—काम में लाते हैं। इनके रखने में किसी प्रकार की आसक्ति का भाव नहीं है।

ज्ञानी पुरुष, संयम-साधक उपकरणों के लेने और रखने में कहीं भी किसी प्रकार का ममत्व नहीं करते। और तो क्या, अपने शरीर तक पर भी ममता नहीं रखते। सच्चे अर्थ में अपरिग्रह की यही बहुत बड़ी मर्यादा है।

अपरिग्रह के संदर्भ में यह बात खास ध्यान देने योग्य है। दर्शन-शास्त्र के आचार्यों से पूछा कि परिग्रह क्या है? तो उन्होंने बताया—""**मूर्च्छा परिग्रहः**" मन की ममता, आसक्ति ही परिग्रह है। वस्तु का त्याग अपरिग्रह नहीं हो सकता, मोह या आसक्ति का त्याग ही अपरिग्रह है।

प्रश्न हो सकता है कि वस्तु का छोड़ना क्या है? आप कहते हैं, मैंने कपड़े का त्याग कर दिया, धन का त्याग कर दिया, मकान का त्याग कर दिया, किन्तु मैं पूछता हूँ कि क्या वह कपड़ा आपका था? वह धन और मकान आपका था? आप चैतन्य हैं, वह वस्तु जड़ है, जड़ और चैतन्य का क्या सम्बन्ध? गधे और घोड़े का क्या रिश्ता, क्या नातेदारी? जड़ पर चेतन का कोई अधिकार नहीं, और चेतन पर जड़ का कोई अधिकार नहीं, फिर यह त्याग किसका?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपका अपना क्या है ? ज्ञानमय आत्मा अपना है, अखण्ड चैतन्य अपना है। इसका त्याग हो नहीं सकता। और, वस्तु का तो त्याग, वास्तव में त्याग है ही नहीं। तो प्रश्न यह है कि फिर त्याग का, अपरिग्रह का क्या मतलब हुआ ? इसका अर्थ है कि वस्तु के प्रति जो ममता बुद्धि है, राग है, मूर्च्छा है, उसका त्याग कर सकते हैं और वही वास्तव में त्याग है, अपरिग्रह है। ममता हट जाने पर, राग बुद्धि मिट जाने पर शरीर रहते हुए भी अपरिग्रही अवस्था है, देह होते हुए भी देहातीत अवस्था है, श्रीमद् राजचन्द्र के शब्दों में—**"देह छतां जेहनी दशा, वरते देहातीत। ते ज्ञानीना चरणमां, वन्दन हो अगणीत।।"** देह के होते हुए भी इसके प्रति निष्काम और निर्विकल्प अवस्था जब प्राप्त हो जाती है, तब सम्पूर्ण अपरिग्रह की साधना होती है।

मूलतः मूर्च्छा अर्थात् ममत्व एवं मोह परिग्रह है। किन्तु, साधारण साधक सहसा उक्त उच्च स्थिति पर पहुँच नहीं सकता। अतः उसे ममत्व-त्याग की यात्रा में अनावश्यक एवं अनुपयोगी वस्तुओं का भी पूर्णतः या क्रमिक त्याग करना होता है। बाह्य वस्तुएँ साधारण व्यक्ति के लिए मूर्च्छा की हेतु बन जाती हैं। अतः कार्य का कारण में उपचार करके वस्तुओं को भी परिग्रह के क्षेत्र में माना गया है। और, उनके त्याग का यथाशक्ति उपदेश दिया गया है। स्पष्ट है, वस्तु त्याग दे, फिर भी उसकी आसक्ति रखे, तो वह वस्तु के अभाव में भी परिग्रह की कोटि में आ जाता है। अतः परिग्रह का चिन्तन द्रव्य और भाव दोनों दृष्टि करना आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org